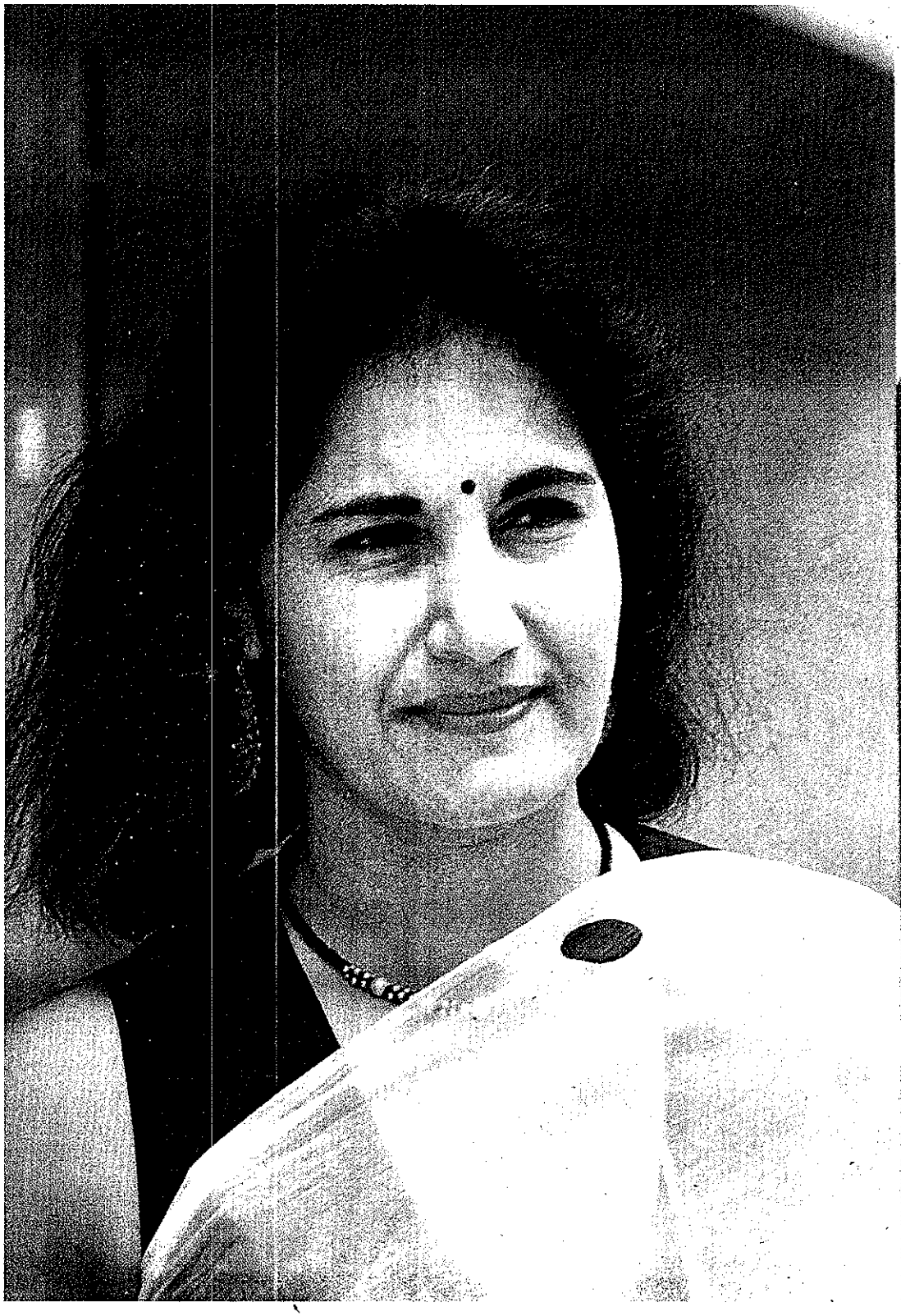

हवन · सुषम बेदी

अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली-32

ओम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव।।

हवन

हिरण्यगर्भ ... आसीत्।
स दाधार ... विधेम।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृत **सुषम बेदी** धामन्नध्यैरयन्त।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देवा वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम।।

मूल्य : सौ रुपये / द्वितीय संस्करण, 1996 / आवरण-शिल्पी : हरिपाल त्यागी / प्रकाशक : अभिरुचि प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 / शब्द-संयोजन : शुभम् ग्राफिक्स, दिल्ली-95 / मुद्रक : विकास ऑफसेट, दिल्ली-32

HAVAN (*Novel*) : Susham Bedi

Rs. 100.00

मां श्रीमती शांतिदेवी धमीजा
और
पिताश्री ईश्वरदास धमीजा को
जिन्होंने समाज में बेटी के गौण स्थान को
जान-मानकर भी प्यार और परवरिश में
कोई कमी नहीं रखी।

लेती है। कड़ा कर लिया मन गुड्डो ने। चाहे कुछ ढीठ होकर भी रहना पड़े। गुड्डो घर में ग्रोसरी भी खरीदकर लाने लगी ताकि पिंकी को उतना बोझ महसूस न हो। यूं एक-एक डॉलर बहुत सोच-समझकर ही खर्चती थी गुड्डो। रोज-रोज की जरूरतों, किराये-भाड़े में ही कितना तो निकल जाता था। घंटे के मिलते तीन डॉलर ही थे। ढंग के स्टोर में काम करो तो कपड़े भी तो ढंग के बनवाने होते हैं। शुरू में वह पिंकी की स्कर्ट-जैकेट पहन गयी थी। बहुत शर्म आयी थी उसे स्कर्ट पहनने में भी। पर यह बात उस तक पहुंचा दी गयी थी कि सही लिबास में ही वह काउंटर पर खड़ी हो। साड़ियां, सलवार-कमीजें घर पहनने में ही काम आती थीं, बढ़िया जरीवाली साड़ियां ज्यादातर बक्सों में ही बंद रहती थीं, बस त्योहार-पार्टी में निकलतीं। राजू के कपड़े, गर्म जैकेट सभी कुछ तो चाहिए था। तभी तो नयी जगह का ख़याल मुल्तवी कर रखा था। यूं कुछेक घर तो देख डाले थे पर सभी किसी आधार पर अस्वीकृत कर दिये गये थे। न्यूयार्क में अपार्टमेंट के किराये ही इतने ऊंचे हैं कि वह दाम सुनकर ही चुप्पी मार जाती थी।

उस दिन गुड्डो को जब तनख्वाह का चेक मिला तो लंच-ब्रेक में चेक भुनाकर उसने अर्जुन और राजू के लिए एक-एक खिलौना खरीद लिया। लौटते हुए लंच टाइम की भाग-दौड़ की वजह से ज्यादा थकी होते हुए भी मन हल्का था। सोच रही थी घर में इतना तनाव रहता है, खिलौना पाकर अर्जुन खुश होगा तो शायद माहौल में कुछ फर्क पड़े।

पर आज गुड्डो के सारे मनसूबों पर गाज गिर पड़ी। मुख्य दरवाजा खोल सीढ़ियां चढ़ रही थी तो मन में कहीं कुछ खटका हुआ। पर उधर ध्यान न देते हुए सीधे अपार्टमेंट के सामने पहुंची, उसने चाबी लगाकर दरवाजा खोला। ध्यान हाथ के पैकेटों पर था। आंख ऊपर उठायी तो एक अविश्वसनीय-सा दृश्य उसके सामने था। उसका सूटकेस दरवाज़े से थोड़ी दूर पर ही पड़ा था, राजू सहमा-सा सूटकेस के पास ही एक मोंढ़े पर बैठा था, आंखें सूटकेस पर ही चिपकी थीं। कुछेक कपड़े इधर-उधर बिखरे थे, शायद किल्लियों से उतारकर फेंके गये थे। अभी हालात का कुछ ठीक अंदाजा गुड्डो को नहीं हो पाया था कि किचन से आती हुई पिंकी उसे वहां देखते ही चिल्लाकर बोली, "प्लीज मैनजी, हैव मर्सी ऑन मी। लेट मी लीव इन पीस। हमारी भी तो जिंदगी है। अब और बोझ नहीं उठा सकते हम। ये रोज-रोज के झगड़े... सतिंदर की टेंशंस... आई कांट टेक इट..." फिर अपनी भरी हुई आवाज को कुछ सम्भालकर बोली, "आय एम सॉरी, आय हैव टु बी रूड टू यू...पर आपने भी तो हद कर दी। अब कितनी देर से तो कमा रही हैं आप। प्लीज, कहीं और नहीं कर सकतीं अपना इंतजाम ?"

गुड्डो अवाक् थी। इस तरह का सिनेरियो तो उसकी सोच के दायरे से भी कहीं दूर था। पिस्तौल आज उसकी अपनी बहन ही उसकी ओर ताने हुए थी। दहशत की एक गोली उसे भीतर तक बेध गयी। मुश्किल से बस इतना उसके मुंह से निकला, "हुआ क्या ?"

और सामने से आते सतिंदर के शब्द हथौड़े जैसे उसके कानों में पड़े, "हम लोग

तो खून-पसीने की कमाई से इनको यहां बुलायें और इनको हमारा कुछ लिहाज तक नहीं। क्या था अगर मैंने राजू को बाजार से सोडा लाने को कह दिया, उठा तक नहीं बिस्तर से। मैं कहता हूं, हमीं को क्या जरूरत पड़ी है कि इनके पीछे मारे-मारे फिरते रहें। इनको सैटल करने के लिए भाग-दौड़ करते फिरें। कह दो इनको, जहां कहीं भी जायें, यहां नहीं रह सकतीं... आई जस्ट कांट स्टैंड देम इन दिस हाउस।"

गुड्डो हक्की-बक्की खड़ी थी...क्या करे...कहां जायेगी अब अंधेरे में... हल्की सहमी आवाज में बोली, 'देख पिंकी, सड़क पर तो खड़ा न कर...कल से घर देखना शुरू कर दूंगी। जो कुछ भी अच्छा-बुरा मिला, मूव कर जाऊंगी...अब इस वक्त कहां जाऊं?''

इस इलाके में पहचान का चेहरा उसी बूढ़े अमरीकी का था..गु ड्डो ने तो उसका नाम-पता तक नहीं पूछा था। अगर रुचि लेती तो आज वह काम आ सकता था। सतिंदर की मौजूदगी में पिंकी और भी गुस्से से बोली, "घर तो आप कब से देख रही हैं पर कोई नाक तले चढ़े तब न ! जब उस गुजराती लड़की के साथ शेयर करने का इंतजाम किया था तब क्यों नहीं गयीं आप ? सच तो यह है कि तब सारा खर्चा खुद करना पड़ता, अब मुफ्त की जो मिल रही है..."

"पर राजू को लेकर मैं किसी के साथ 'शेयर' थोड़े ही कर सकती हूं..यहां जो देख लिया शेयर करके।"

अंतिम वाक्य उबाल ले आया था पिंकी में। गुड्डो कहना तो सीधे से यही चाहती थी कि बच्चे की पढ़ाई या आजादी के लिए उसे स्वतंत्र रूप से ही रहना चाहिए पर मुंह से चोट करने वाला ही वाक्य निकला। आहत तो थी ही गुड्डो।

"शेयर करना आपको आता हो, तब न। मुझे सब पहले ही कहते थे कि हिन्दुस्तानियों को यहां रहने का शऊर ही नहीं। इतना गंदा कर रखा है आप लोगों ने यह घर कि घुसने का मन नहीं करता। किसी चीज़ का सलीका ही नहीं। यहां हिन्दुस्तान जैसे नहीं रख सकते घर। यहां के सफाई के स्टैंडर्ड कुछ और ही हैं।"

यह चोट तो गुड्डो की तहजीब पर थी। चिरौरी वाला रुख छोड़ अचानक वह भी एकदम आक्रामक हो उठी। बोली,"वाह रे सफाई के फरिश्ते ! बड़ा अमरीकन बनने चली है...यहीं पैदा हुई थी न ! देख ली तेरी भी सफाई मैंने...बिस्तरों के नीचे मैले कपड़े छिपाकर, अलमारियों, दराजों में सारा गंद बंद करके और खुशबुएं छिड़ककर होती है न सफाई...बड़ा समझना मत तू खुद को...वहां से निकली है तू भी जहां से मैं...आज चार पैसे क्या हो गये, बड़ा घमंड हो गया है तुझे...घर से निकालती है मुझे ...तेरी ये जुर्रत हुई कैसे ? आज मेरा मरद जिंदा होता तो देखती कैसे तू बड़ी बहन की बेइज्जती करती। अपने हाथों से पाला है तुझे, पोतड़े धोये हैं तेरे मैंने ! करने चली है सफाई की बात ! टट्टियों में लिबड़ी रहती थी, नाक साफ करने की तो तमीज नहीं थी तुझे।"

गुड्डो बेहाल बोले चली जा रही थी...बर्रों के छत्ते को छेड़ दिया था किसी ने। "थू...थूकती हूं तेरे घर पर...भगवान ही बदला लेगा जो सुलूक किया है तूने मेरे

साथ... तू क्या निकालेगी मुझे, मैं ही खुद जाती हूं। जो लाया है वह ठिकाना भी बनाएगा। तू कुछ नहीं कर सकती किसी को। भगवान है असली करने वाला। मैं फालतू में अहसान मानती रही तेरा। तू होती कौन है मुझे बुलाने वाली या निकालने वाली ?"

गुड्डो का पूरा बदन जैसे जल रहा था। हाथ आवेग से कांप रहे थे। राजू ने मां का यह रूप पहली बार देखा था। बहुत घबरा गया था। दोनों बांहों से गुड्डो को घेरते हुए बोला, "स्टॉप इट, ममी ! प्लीज़, स्टॉप इट नाऊ।" फिर थोड़ी देर बाद डरते-डरते बोला, "कैन वी गो टू गीता मासीज़ हाउस।"

सहसा गुड्डो को अपनी लाचारी पर रुलाई फूट पड़ी।

"बस किस्मत ही खराब थी मेरी, वरना यहीं क्यों आते। अब तो सड़कों पर रुलने की भी नौबत आ गयी। ऐसी बेकदरी करनी थी तो बुलाया ही क्यों था यहां। अब हम गंदे, लीचड़ हो गये। जब हमारे घर आ-आकर महीनों पड़ी रहती थीं, तब ? तब क्या था ? जालिम, यह जो कुफ्र ढहा रही है मुझ पर.... भगवान ही इसका बदला लेगा।"

अंतिम वाक्य कहते-कहते गुड्डो उस पवित्र आत्मा-सा महसूस कर रही थी जिसका शाप अचूक होता है। पिंकी-सतिंदर एकदम खामोश थे। मन में बहुत पश्चाताप था पर रोकने को तैयार होकर भी रोकने की बात कह नहीं पा रहे थे। डर था कि फिर से वही सिलसिला दुबारा न शुरू हो जाए। गुड्डो के चले जाने में ही सबकी भलाई थी। वे चुपचाप गुड्डो के अगले कदम की प्रतीक्षा करते रहे।

टैक्सी में गीता के घर की ओर जाते हुए गुड्डो मन को स्थिर करने के लिए मंत्र गुनगुनाने लगी...हवन के रटे-रटाये मंत्र...यत्कामास्ते.... कामना से क्या मतलब था उस ऋषि का। सारा वैदिक दर्शन, सारे मंत्र इस भौतिक जीवन को ही तो श्रेय बनाने की बात करते हैं...यही श्रेय है उस प्रेय तक पहुंचने का...इन्हीं कर्मों को करते हुए ही तो परमात्मा तक पहुंचना है न...पर क्या सच में जीवन का सत्य आत्मोन्नति है ? पर आत्मोन्नति स्वार्थ भी तो है। छोटापन और कमजोरी भी तो। तब क्या सही है गुड्डो के लिए ? क्या जो वह कर रही है वह सही है ? पर अब पीछे भी तो नहीं हटना है। सात सौ रुपल्ली वाली टीचरी उसे कहां तक ले जाएगी। नहीं, अब तो यही करना है। कर्म-क्षेत्र यही है उसका। गीता का अपार्टमेंट पिंकी के यहां से करीब बीस किलोमीटर दूर 'फ्लशिंग' नाम के इलाके में था। यहां मैनहैटन के मुकाबले में मकानों के किराये कहीं सस्ते थे। न्यूयार्क में आने वाले कई प्रवासी भारतीय इसी हिस्से में आकर बस गए थे। हिन्दुस्तानी साड़ियों, ग्रोसरी और दो सौ बीस वाल्ट की बिजली से चलने वाली मशीनों वाली दुकानें यहां प्रवासियों की बढ़ती तादाद के साथ-साथ बढ़ रही थीं।

गीता का अपार्टमेंट एक दस-मंजिली इमारत के सातवें तले पर था। ऊपर जाने के लिए एलिवेटर था। दो बेडरूम के इस अपार्टमेंट में यूं किसी बाहर के व्यक्ति के लिए जगह थी नहीं। एक बेडरूम में गीता के तीनों बच्चे कनिका, राधिका और अशोक रहते थे, दूसरे में गीता और जीजाजी। गुड्डो का इंतजाम 'लिविंग रूम' में किया गया। रोज रात

को फर्श पर ही गद्दा डालकर बिस्तर बिछा दिये जाते। सुबह-सुबह गुड्डो-राजू दोनों को ही काम पर और स्कूल जाना होता और कमरा फिर से बैठक बन जाता। यूं दिनभर बैठक का इस्तेमाल करने वाले जीजाजी को छोड़ और कोई घर पर नहीं होता था। जीजाजी की ड्यूटी कभी शाम चार बजे से रात बारह बजे तक या रात बारह बजे से सुबह आठ बजे तक होती, दिन में वे अपनी नींद पूरी करते। अशोक और राधिका को साढ़े तीन बजे के करीब स्कूल से घर लौटने पर जीजाजी ड्यूटी के हिसाब से कभी मिलते, कभी नहीं। यूं राधिका ने तेरहवें में कदम रखा था, अशोक ने ग्यारहवें में। कनिका हाईस्कूल में थी, सोलह की हो चुकी थी। वह शाम तक ही घर आती थी। सुबह-सुबह और शाम को उस घर में भीड़ हो जाती... शोर, किटपिट, लड़ाइयां। टेलीविजन पर कोई कुछ प्रोग्राम देखना चाहता, कोई कुछ, इसी बात पर बच्चों में झगड़ा होता रहता। राधिका बहुत खीझ और गुस्से से बात करती। राधिका-अशोक एक-दूसरे को अमरीकी भाषा में गालियां देते। सारी शाम टेलीफोन की घंटियां बजती रहतीं...राधिका घंटों टेलीफोन पर लगी रहती. ज्यादा फोन उसी की सहेलियों के होते थे, बाकी इक्का-दुक्का किसी और के। राधिका डांट भी खाती रहती और करती वही जो उसे भाता। कनिका का स्थान अलग-सा था इस घर में... उसका कहा तो उसके मां-बाप तक मानते थे। गीता बताती थी--कनिका बहुत मेधावी है और कनिका ने भी जैसे उस महत्त्व को ओढ़ा हुआ था, वह घर पर ज्यादा किसी से बात नहीं करती। हर शाम पढ़ाई का कोई बड़ा काम 'टर्म पेपर' वगैरह निपटाना होता था...वह आते ही पापा-मम्मी का कमरा बंद कर वहीं पढ़ती रहती थी।

गुड्डो को यहां से काम पर जाने में सवा-डेढ़ घंटा अंडरग्राउंड ट्रेन से लग जाता था। राजू का भी यही हाल था। गुड्डो-राजू के अकेले ट्रेन में सफर करने से घबराती भी थी, पर कोई और चारा न था। उस दिन दुबारा उसके साथ हादसा हो गया। ट्रेन में सामने की सीट पर बैठे तीन युवा लड़के अचानक रिवाल्वर तान खड़े हो गये। डिब्बे की सवारियों की ओर मुखाबित होकर बोले कि जिस-जिस के पास जो कुछ है, निकाल दे। एक आदमी ने हल्की-सी आनाकानी की थी, उन्होंने उस पर गोली चला दी। गुड्डो ने अपने गले की चेन, घड़ी और डॉलरों के नोट - सभी कुछ उसके हवाले किये। ट्रेन रुकते ही वे लड़के सारा सामान थैले में भर भाग खड़े हुए... शोर मचा। ट्रेन बहुत देर स्टेशन पर ही रुकी रही। ...घायल आदमी को पुलिस के सिपाहियों ने उतारा जिन्हें तभी बुलाया गया था। लूट जाने का यह सामूहिक अनुभव पिछले अनुभव की दहशत से कुछ कम था पर गुड्डो का डर और भी बढ़ गया था। यहां तो कभी भी कुछ भी हो सकता है...जिस आदमी को गोली लगी, क्या वह बच जाएगा ? घबराहट से उसका मुंह सूख रहा था...उसका राजू वह भी तो ट्रेन से आता-जाता है....और वे लड़के तो हाईस्कूल में ही पढ़ने वाले जैसे दीखते थे। उसने सुपरवाइजर से अर्ज किया कि शाम देर तक नहीं रुकेगी, चार बजे तक लौटना है उसे। राजू को पास ही किसी स्कूल में भेजना होगा। राजू को रोज़ हिदायतें देती रहती. ...अकसर वह उसे स्टोर के पास मिल जाता था और वे दोनों साथ घर आते। ट्रेन में

घुसते ही वही नज़ारा उसकी आंखों में आ जाता था और वह राजू और अपनी रक्षा के लिए मन-ही-मन मंत्र बोलने लगती। उसने अपने आपको समझा लिया था कि जब भी मंत्र स्मरण करके कोई भी काम करेगी, फिर वह चाहे ट्रेन में चढ़ना ही हो, तो वह सफल ही होगी। इस तरह उसने डर के साथ एक समझौता कर लिया था।

गीता ने गुड्डो से घर के खर्चे को लेकर सीधे-सीधे हिसाब कर लिया था। यहां सभी की आमदनी पूरी-पूरी है, महंगाई इतनी है कि और दो लोगों का खाना-खर्चा गीता का परिवार नहीं उठा सकेगा। सो गुड्डो उसे तीन सौ डालर महीना देती रहे...पांच-छ: सौ तो महीने का कमाती ही है वह। इस तरह उसे किसी के अहसान के नीचे दबने की भी जरूरत नहीं। गुड्डो को धक्का-सा लगा था कि बहन उसके सिर पर कमाना चाहती है, पर यह जीजाजी की ही सूझबूझ होगी। और कोई बिजनेस चला जो नहीं, यही सही। पर गुड्डो भी तो पिंकी के घर बैठ पैसे जोड़ रही थी। जब जिसका दांव लगे।

जीजाजी बेचारे कौन-से सुखी हैं। डोरमैन की नौकरी है तो चपरासीगिरी ही--चोट तो उन्होंने गुड्डो से भी शायद बड़ी खायी है। अभी भी वीक-एंड पर पटरी बाजार में सामान ले जाकर बेचते हैं, सारे परिवार का वीक-एंड मनाने का यही शोशा होता है....सामान पहुंचाना-फैलाना-समेटना, बिक्री का हिसाब। पर ज्यादा बिक्री होती नहीं थी। पीतल की ऐशट्रे, कैंडलस्टैंड, नटराज और दूसरी मूर्तियां बड़ी आम-सी हो गयी हैं। नयापन खोजने वाला यह समाज लगातार नये-नये देशों से अलग तरह का माल आयात करता रहता था। गुड्डो को अफ्रीकी देशों के इन्हीं बाजारों में दिखे मुखौटे बहुत पसंद थे....जब घर बनेगा तो लेगी। जीजाजी कहते थे - यह बचा माल खत्म हो जाए तो दुबारा नया माल नहीं खरीदेंगे। जो काम भाता नहीं वह क्यों किया जाए ? पर क्या चपरासीगिरी भाती होगी उन्हें ? पर उससे तो रोटी चलती थी। जीजाजी ऊपर से बहुत निर्विकार-सा रखते चेहरा, पर भीतर बहुत रंज़ और शिकायत थी, जो उनके बोलने में जाहिर हो जाती। इंसिक्योरिटी भी इतनी थी कि उनकी बिजनेस वाली प्रवृत्ति में घुल-मिलकर अजीब तरह की कंजूसी की वृत्ति बन गयी थी। पाई-पाई का हिसाब करते और बहुत सोच-समझकर पैसा खरचते थे। यूं खुली आमदनी तो थी भी नहीं, ऊपर से पढ़ने वाले बच्चों का खर्चा। कनिका को 'स्कॉलरशिप' मिल रही थी वर्ना उसकी साल भर की फीस तो गीता और जीजाजी की तनख्वाह मिलाकर पूरी पड़ती। वह पढ़ाई के साथ कुछेक घंटे लाइब्रेरी में काम करके भी कुछ कमा लेती थी। गुड्डो को जीजाजी की बातें तथा व्यवहार बहुत बदले हुए लगते या उसने अब तक नज़दीक से उनको जाना ही नहीं था। उस दिन जीजाजी से कहा,"आपके काम वाली जगह के पास, सुना है, बादाम-पिस्ता बड़े सस्ते मिलते हैं। कोई जा रहा है, अनिमा-तनिमा के लिए भेजना चाहती हूं उनके हाथ। मुझे छः-सात पाउंड के करीब ला देंगे ?"

छूटते ही जीजाजी ने कहा था, "ठीक है, डेढ़ डॉलर उसके आने-जाने का सबवे का किराया मिलाकर पैसे दे दो जितना भी मंगाना हो।"

वर्षों पहले जब गुड्डो के पति की मौत हुई थी और वह तभी-तभी खरीदे पलंगों का

जोड़ा बेचना चाहती थी तो इन्हीं जीजाजी ने झट पांच सौ रुपये निकालकर कहा था, "यह लो, पलंग मत बेचना, यह तो प्रेम जी की निशानी है।" कहां चली गयी वह दरियादिली अब ! एक-एक डॉलर मानो आंख पर उठाते हैं जीजाजी !

गीता के घर गुड्डो को चैन-आराम कतई नहीं था। मेहमानों जैसी ही पड़ी थी। राजू को पढ़ने की भी सुविधा नहीं थी, कोई निश्चित कोना तो उनके पास था नहीं। गुड्डो सोचने लगी, तीन सौ डॉलर तो देती है, ऊपर से घर भी अपने घर जैसा नहीं। उसने मकान देखना शुरू कर दिया। गीता के घर के थोड़ी ही दूरी पर एक पांच मंजिली इमारत की बेसमेंट में बड़ा-सा कमरा खाली था। किराया एक सौ पिचहत्तर डॉलर। बेसमेंट में सीलन और अंधेरा-सा था पर गुड्डो को प्राइवेसी और शांति की बेहद जरूरत थी - राजू भी तो कितना लटक लिया उसके साथ-साथ।

गीता को पता लगा तो भौंचक रह गयी थी - चुपके-चुपके गुड्डो ने मकान भी ढूंढ लिया। जीजाजी को आती कमाई का रुक जाना बुरा लगा था, वरना गुड्डो और जीजाजी में इधर काफी तकरार चलती रहती थी। जीजाजी की आशिक मिजाज वाली छेड़छाड़ गुड्डो को अब बिलकुल नहीं भाती थी। उनका गुड्डो के कंधों पर हाथ रखना, जब भी घर सोना, यही इसरार करना कि गुड्डो जमीन पर गद्दा क्यों बिछाती है, उन्हीं के बिस्तर पर क्यों नहीं आ जाती। गुड्डो उनकी ऐसी कोशिशों को बेदर्दी से दुत्कार देती। जीजाजी को कहीं यह आश्वासन मिल जाता कि गुड्डो उन्हें पसंद करती है तो गुड्डो का उस घर में स्वागत ही स्वागत था। पर गुड्डो ने अपनी किसी हरकत से ऐसा कभी जाहिर नहीं किया। गुड्डो तो पहेली बनी हुई थी जीजाजी के लिए। प्रेम जी की मौत के बाद एक बार जब वे गुड्डो के घर अकेले ठहरे हुए थे तो एक शाम बहुत जोर दिया था कि गुड्डो उनके साथ फिल्म देखने चले। तब गुड्डो ने यही कहकर इनकार किया था कि लोग उन्हें साथ-साथ घूमते देखेंगे तो जाने क्या-क्या बातें बनाएंगे। अब तो लोग नहीं थे...और गुड्डो को जीजाजी के 'साली आधी घरवाली' के मज़ाकों से भी कोफ्त होती थी।

जीजाजी की शक्ल ने उसे कभी आकर्षित तो किया नहीं था, अब वे अपने गौरव से वैसे ही चुके हुए थे। गुड्डो भी उन औरतों में से थी जिनके लिए पुरुष का व्यक्तित्व उसकी पदवी से बनता था। उसके विधवा होने में नब्बे प्रतिशत दुःख तो इस बात का था कि वह एक ऊंचे अफसर की पत्नी नहीं कहलायी जाएगी। अपने बच्चों को भी बढ़िया शिक्षा देने में वह अपनी औकात से ज्यादा खर्चती रही थी ताकि वे भी उस स्तर को पा सकें। यहां अपने को लेकर भी उसने सोच रखा था कि कुछ-न-कुछ पढ़ाई करके उसे आमदनी का जरिया बढ़ाना ही है। जब बेटियां आएंगी तो सैल्सगर्ल की तनख्वाह में गुज़ारा थोड़े न हो सकेगा।

कुछ खोज-बीन के बाद गुड्डो को पता लग गया था कि गरीब नागरिक और प्रवासियों के लिए फैडरल सरकार ने चाइना टाउन में ट्रेनिंग की एक योजना बनायी है। इसके तहत एकाउंटिंग में ट्रेनिंग का भी एक प्रोग्राम था जिसमें पढ़ाई के साथ सौ डॉलर हफ्ते

का वजीफा भी मिलता था। गुड्डो के पास अंग्रेजी में एम. ए. की डिग्री तो थी ही -- दाखिले में मुश्किल नहीं होगी। बस, ठेस सिर्फ इसी बात की थी कि अफसर की बीवी होकर उसे गरीब तबके के आवासियों में नाम शामिल करना था।

काफी देख-परख के बाद गुड्डो राजू के साथ बेसमेंट वाले अपार्टमेंट में शिफ्ट कर गयी। और कोई एक कमरे का अपार्टमेंट तीन-चार सौ से कम में नहीं मिलता था। इस वक्त गुड्डो की जरूरत थी अपना एक घर, जहां राजू और वह सुकून से रह सकें। वह बुझा-बुझा-सा बेसमेंट वाला अपार्टमेंट उसके लिए राहत की सांस था।

फर्नीचर जुटाने में उतनी मुश्किल नहीं पड़ी। पलंग उसने नये खरीदे, बाकी छोटा-मोटा सामान कुछ सेकंडहैंड और कुछ कूड़े के ढेरों से मुफ्त में मिल गया। एक बार उसे मेज़-कुर्सी और सोफा चेयर भी बाहर फिंके हुए मिल गये थे। बस, गुज़ारा चल गया।

अब गुड्डो को बेटियों की फिक्र थी। बड़ी लड़की एम.एस-सी. कर रही थी। उसका पी-एच. डी. प्रोग्राम में दाखिला कराना था। होस्टल में जवान लड़कियों को छोड़कर फिक्रमंद रहती थी गुड्डो । घबराकर अकसर आधी रात नींद खुल जाती और उठकर सोचने लगती... कैसे सब पार लगेगा अकेली जान के बलबूते।

जब से बेसमेंट में आयी थी, मुक्ति की चाह धीरे-धीरे अकेलापन बन रही थी। बहनों के घर में लाख झगड़े हों, एक सुरक्षा की भावना भी थी। अब उसे हरदम डर बना रहता था। राजू या उसे कुछ हो जाए तो कौन करेगा देखभाल ! कैसे संभालूंगी अकेले ? राजू तो अभी बच्चा है... और सबको अपने कामों से ही फुरसत नहीं।

उस इतवार को उदास अकेली गुड्डो की आंखों से दिनभर आंसू बहते रहे। न पढ़ा गया, न कुछ काम हुआ। राजू स्कूल से एक ट्रिप पर गया हुआ था। गीता का फोन राहत थी। "मुझे अभी-अभी पता लगा कि आज कृष्ण जन्माष्टमी है, मंदिर चलना है ?"

"हां, जरूर, मैं तो वैसे ही खाली बैठी हूं। पर मंदिर है कहां ?"

"मुझे मालूम है।"

गुड्डो को उस दिन मंदिर जाकर अच्छा लगा था। सोचने लगी, हर इतवार को जाया करेगी, पर कितने ही इतवार गुज़र गये। पांच दिन लगातार अंडरग्राउंड ट्रेन के दहाड़ते शोर को सहकर फिर से छुट्टी वाले दिन उसमें जाने की हिम्मत नहीं होती थी। घुप्प अंधेरे को चीरती हुई सब वे ट्रेनें अपनी दहाड़ों से ज़मीन के अंदर की खामोशी को भी दहाड़ में बदल देती थीं। एक बार दो स्टेशनों के बीच पैंतालीस मिनट अंधेरे में खड़ी रही थी ट्रेन। बहुत घबराहट हुई थी गुड्डो को। इस बीच दूसरे यात्री खामोश ही खड़े या बैठे रहे, किसी ने किसी से बात करने की जरूरत नहीं समझी। बस किताब या अखबार पर नज़रें टिकाये वे इंतजार करते रहे। ड्राइवर थोड़ी-थोड़ी देर बाद माइक पर सूचना दे देता कि किसी

गड़बड़ी की वजह से ट्रेन रुकी है, घबराने की कोई बात नहीं है। लोग सिर उठाते, पर ज्यों ही किसी से नज़र टकराती, उसे फिर से अखबार या किताब में टिका दिया जाता।

अपने अखबारवाले स्थल पर खड़ी-खड़ी गुड्डो पहले जो धक्कामुक्की देखा करती थी, अब वह उसका अंग बन गयी थी। वह भी वक्त पर पहुंचने की खातिर लोगों को धकिया देती थी। ऐसे वक्त कुछ शिकायती स्वर सुनायी पड़ते। काला आदमी 'डोंट पुश' कहता, गोरा अमरीकी कहता, 'प्लीज एक्सक्यूज मी !' गुड्डो को हर सुबह होने वाला यह नाटक बड़ा प्रतीकात्मक लगता था आवासियों की स्थिति को लेकर। जैसे अमरीका में पहले से बसे लोग नये आने वालों से कह रहे हों, "देखिए, वहां बाहर ठहरिए, ढकेलिए मत।" जबकि वे खुद भी धक्का देकर ही अंदर घुसे हैं। इतनी रंग-नस्लों के लोग यहां आकर बसे हैं कि ट्रेन के डिब्बे में नज़र घुमाती गुड्डो को एक साथ पंद्रह देशों के नमूने वहां दीख सकते थे। सबकी अलग से पहचान मुश्किल थी, क्योंकि पहनावा तो सबका अमरीकी ही था। फर्क था तो सिर्फ स्टाइल में। कोई तो बहुत ही सलीके से सूट-बूट-टाई में लैस तो कोई पैबंद लगी जीन में। मगर इससे यह ज़रूरी नहीं कि फटी जीन पहनने वाले के पास कम दौलत हो। कुछ लड़कियों का मेकअप इतना मुखर कि चेहरा मुखौटा ओढ़े-सा दिखता था और कुछ एकदम बेपरवाह, उलझे बालों में अस्त-व्यस्त नज़र आती थीं। इतनी रंग-नस्लों और विविध रुचियों के कंट्रास्ट एक साथ पहले नहीं देखे थे उसने। गुड्डो को अमरीकी पोशाक में देखकर लोग उसे स्पेनिश या लातिन-अमरीकी समझ लेते थे। एक बार एक पुरुष ने उससे स्पेनी भाषा में सवाल भी पूछा था। दो बार सुनकर भी जब उसकी समझ में कुछ नहीं आया तो गुड्डो को अपने गलत समझे जाने का अंदाजा हुआ। तब वह झट बोली, "इंडियन, नॉट स्पेनिश !"

उस इतवार हिम्मत करके चली ही गयी मंदिर। राजू अपने होमवर्क के कारण साथ नहीं जा पाया। जब वह मंदिर की घंटिया बजा रही थी तब उसका हाथ किसी दूसरे के हाथ से टकरा गया।

"एक्सक्यूज मी प्लीज !" गुड्डो को यह आवाज पहचानी-सी लगी। शायद पंजाबी लहजे के कारण ऐसा लगा। आंखें मिलीं तो वैसा ही अपनापा और पहचानपन उस चेहरे पर भी था। वह अपनी उत्सुकता रोक नहीं पायी। बोली, "न्यूयार्क के रहने वाले हैं या हिन्दुस्तान से घूमने आये हैं ?"

"नहीं, यहीं रहती हूं !"

बस, बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। वे सज्जन डॉक्टर थे। न्यूयार्क के एक अस्पताल की पीडियाटिक डिवीजन के डायरेक्टर। उनकी पत्नी भी डॉक्टर थीं। उनके दो बच्चे थे। उनकी मां भी उनके साथ रहती थीं। वे लोग भी मंदिर में आये हुए थे। उनकी मां गुड्डो की बीजी से वाकिफ थीं। वे लोग एक ही तरफ के थे, दिल्ली में आर्य समाज मंदिर में भी मिलते थे। उनकी मां ने बताया कि इस दक्षिण भारतीय मंदिर में वे कम ही आती हैं। उत्तर भारतीयों का एक गीता मंदिर है जहां ज़्यादा गुजराती जाते हैं। वे स्वयं